मानव मन्दिर

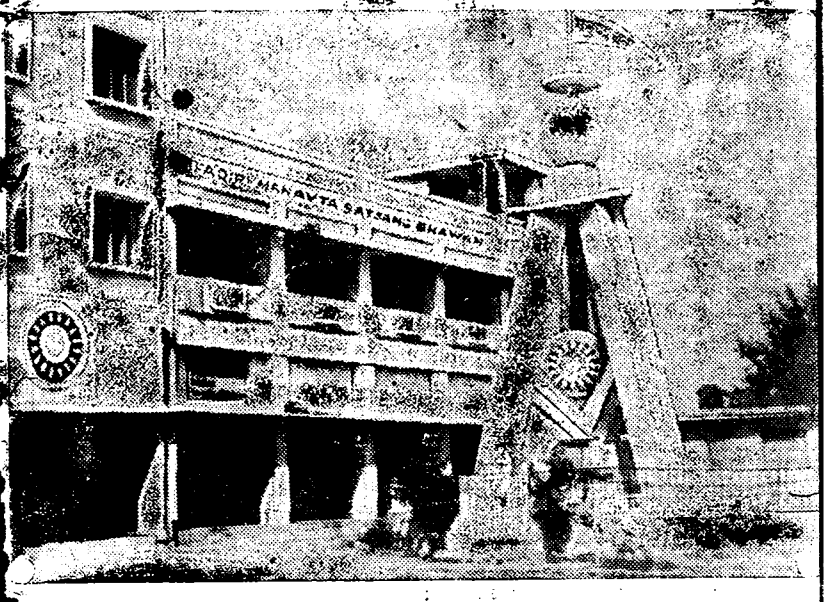

फकीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट

तेहरी रोड, होशियारपुर

FORM I

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of Publication	Monthly
Printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir. Hoshiarpur
Editor's Neme	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir of partners of shareholders, holding more than one Percent of the total capital	- Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10-9-84 Signature of Publisher

Printed and Published by: Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press. Manavta Mandir Hoshirapur. for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

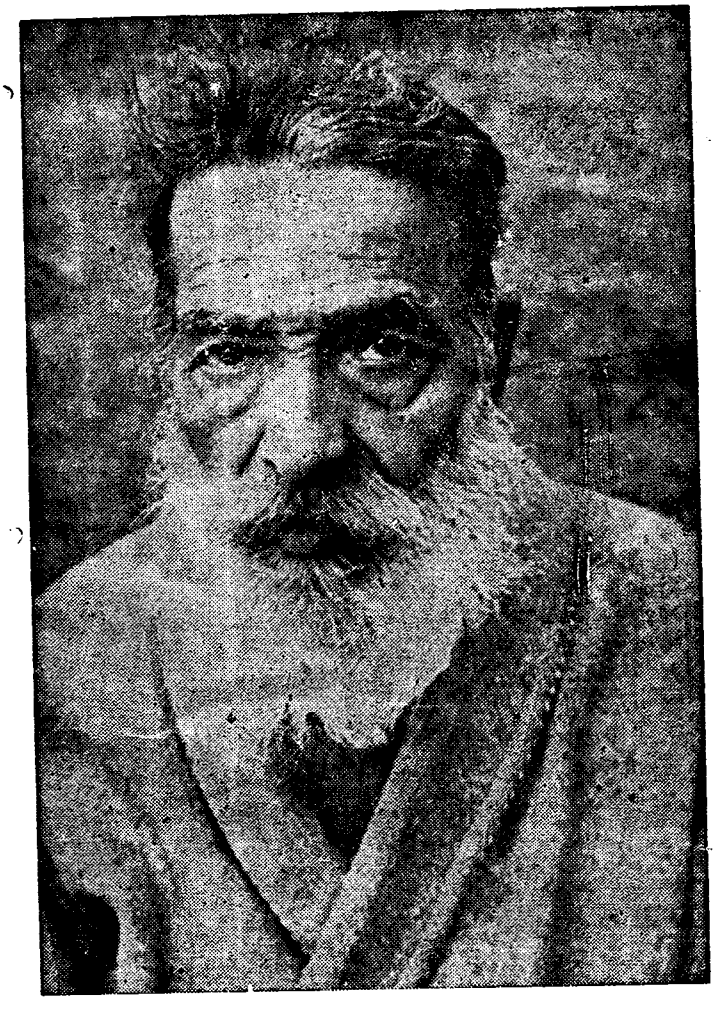

Param Sant Param Dayal Faqir Chand Ji Maharaj

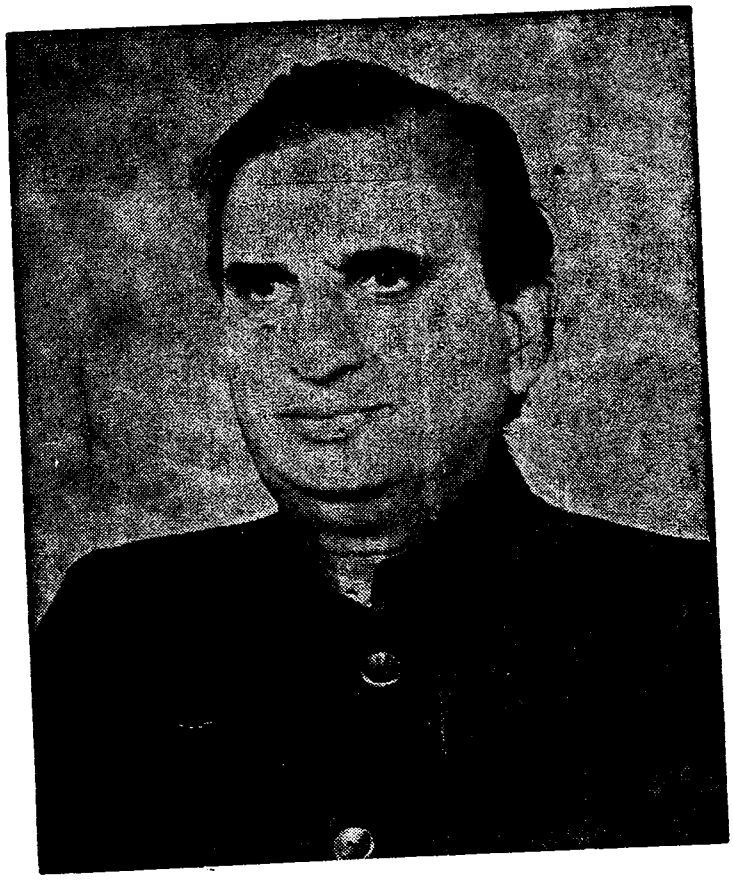

Param Sant Manav Dayal Dr. I.C. Sharma Ji Maharaj

मासिक—

मानव मन्दिर

सम्पादक :

डा० परस राम अग्रवाल

| वर्ष 11 | सोमवार 10 सितम्बर 1984 | संख्या 5 |

करीब-करीब 90-95 फीसदी पूरी होंगी। इसका सबूत मुझको अपनी जिंदगी में मिला। लोग मेरा ध्यान करते हैं उनके अन्दर मेरा रूप प्रकट होता है और उनके काम पूरे हो जाते हैं और Credit इस Holiness पंडित फ़कीर चन्द को मिलता है। समझते हो मेरी बात को? मैंने क्या कहा है आपको। हर समय आप आते हो रुपया, दो रुपया दे जाते हो। मुझे पैसे को ज़रूरत नहीं लेकिन मैं तुम लोगों की आँखों में मिट्टी डालना नहीं चाहता। दान की सूरत में, मन्दिर की सूरत में जो किसी की मर्जी हो दे दे। मगर मैं तुम लोगों की आँखों में मिट्टी डालकर तुम लोगों से पैसा लेना नहीं चाहता। खुशी के साथ, प्रेम के साथ जो जिसकी मर्जी हो दे, इसमें कोई पाप नहीं। अपने लिए तो मैं लेता नहीं, मन्दिर के लिए लेता हूँ।

गुरु तुम्हारे अंड में है यानि मन में है। वह क्या चीज़ है मन में? तुम्हारा विश्वास है, तुम्हारा यकीन है, तुम्हारा Faith है। जो कुछ है तुम्हारा अपना ही विश्वास है। मेरे ख्याल में मैंने जो कुछ कहा वह इसी से कहा कि आप समझ जायें। अपनी करनी अपनी भरनी, आपको सत्संग में यही फ़ायदा मिलता है। रामायण में भी लिखा है :—

बिन सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिन सुलभ न सोई॥

सत्संग के बगैर समझ नहीं आती मगर यह समझ भी राम की कृपा हो तब आती है। सत्संग हरएक आदमी करता है, कराता है मगर कोई सच्चाई बयान नहीं करता। आप लोगों ने; गुप्ता साहब ने मुझे बुलाया, खर्च किया। आप कभी कोई चीज़ बनाते हैं, कभी कोई चीज़ बनाते हैं। मैं अपने सिर पर एक जिम्मेवारी महसूस करता हूँ। मैं कोई

वजन अपनी आत्मा पर लेकर नहीं जाना चाहता। आपको धोखा देकर, चारसौबीस करके मैं आपसे न पैसा लेना चाहता हूँ, न मान लेना चाहता हूँ, न इज्ज़त लेना चाहता हूँ। ज्ञान के पीछे अगर कोई शख्स मन्दिर की मदद करना चाहे तो वह कर सकता है। मुझे उससे कोई इन्कार नहीं है। मुझे यह यकीन हो गया कि जो कुछ है मेरे मन के अन्दर है। कबीर साहिब कहते हैं कि जिसको यह यकीन हो गया कि जो कुछ है मेरे मन के अन्दर है। उसके लिए फिर आगे क्या है? जहाँ हमें पहुँचना है :—

"तू सूरत नैन निहार यह अंड के पारा है।"

अब पूछोगे कि सुरत क्या है। आपको इस बात का तजुर्बा नहीं होगा। मैंने तो अभ्यास किया हुआ है। मुझे तो पता है कि सुरत क्या है, मगर मैं आपको समझाये देता हूँ। आप स्वप्न में कोई चीज़ देखते हो, गुरु का रूप देखते हो, देवी का रूप देखते हो या कोई और चीज़ देखते हो। पर वह और चीज़ है और जो तुमको नज़र आता है वह और चोज़ है। आपने अपने अन्तर देवी को देखा, कृष्ण को देखा, मुझे देखा या किसी और चीज़ को देखा। देखने वाली तुम्हारे अन्दर कोई और चीज़ है, जो तुम देख रहे हो वह और चीज़ है, जो तुम सुन रहे हो वह और चीज़ है, जो सुनने वाला है वह और चीज़ है।

'सूरत नैन निहार'

यह जो तुम्हारी अपनी तवज्जह है, वह जो चीज़ है उसकी आँखों से देखो तब तुम को असली और सच्चा ज्ञान मिलेगा और जीवन, मरण, से तू बरी हो जायेगा।

"तू सूरत नैन निहार यह अंड के पारा है।
तू हिरदे सोच विचार यह देस हमारा है॥"

कौन-सा देश हमारा हुआ ? पिंड, अंड, ब्रह्माण्ड से पार वो है देश हमारा, जहाँ से हम सब आये हैं। तुम सोचो मेरी बात को कि हम कहाँ से आ ये हैं, सब कहाँ से आये हैं। अरे ! माँ के पेट से ही पैदा हुए और तो कहीं से नहीं आये ! तुम्हारा असल जो है एक वीर्य का कीड़ा है, जो बाप के वीर्य में था शुक्राणु, sperm। और आज हम सात-सात फुट के जवान हैं कोई फ़कीर चन्द बना हुआ है, कोई कुछ बना हुआ है, कोई कुछ बना हुआ हैं। कितना कुछ हमने दुनिया में तमाशा बनाया हुआ है मगर हमारा असल क्या है ? बाप के वीर्य से एक कीड़ा जो माँ के पेट में आया, फिर माँ ने जो खुराक खाई उससे बच्चा पला और फ़कीर चन्द बन गया और लोगों को उपदेश करता फिरता है। अब तुम्हारे अन्दर में वह जो वीर्य का कीड़ा है वह कहाँ से पैदा हुआ ? यह बड़ा भारी सवाल है जो सोचने के काबिल है। जितना गन्दा पानी होता है, उसमें कीड़े पैदा हो जाते हैं। इस तरह चालीस बूँद खून से आदमी का एक बूँद ओजस् बनता है। यह हिन्दु शास्त्रों की वैद्यिक है, हिकमत है और चालीस बूँद ओजस् का एक बूँद वीर्य बनता है। इसीवास्ते हुक्म है कि २५ साल से पहले लड़का शादी न कराये ताकि उसका वीर्य न जाये, वह पुख्ता हो जाये। फिर उसके अन्दर Germs अपने आप आ जाते हैं। अब वह वीर्य कहाँ से बना ? खून से बना। खून बिलकुल कोई बीज पैदा नहीं कर सकता जब तक कि बन्दा खुराक न खाये। कोई खुराक तब तक पैदा नहीं हो सकती जब तक उस पर सूर्य, चाँद, सितारों की किरणें न पड़ें। यदि सूर्य न हो तो सारी दुनिया नष्ट हो जायेगी। इसवास्ते हमारे असली जिस्म का रूप क्या है ? प्रकाश।

अगर कोई शख्स यह देखना चाहे कि हमारा असली घर क्या है ? तो उसको क्या चाहिए ? उसको चाहिए कि पहले जिस्म को भूले, फिर मन को भूले, फिर वह चीज़ जो तुम्हारे अन्दर है, जो उस चोज़ को देखती है, फिर उसको देखे, उसको पहचाने कि वह क्या है । यह है सच्चाई । लाख तुम किसी गुरु के पैर धो-धो कर पी लो, विश्वास से, श्रद्धा से जो-जो तुम दोगे वह मिलेगा यह कुदरती बात है । गाली दोगे गाली मिलेगी, प्रेम दोगे प्रेम मिलेगा, जो कुछ दोगे वह मिलेगा । इसवास्ते सन्तों के मार्ग में जो हमारा घर है वह बड़ा ऊँचा है । जहाँ से हम आये हैं वहीं हमें जाना है । अगर बहुत सी चीज़ समझना चाहते हो तो पढ़े-लिखे आदमी हो यह सारी दुनिया अलग किसी चीज़ की बनी हुई है । तुम Battery लो, Battery में E M.F. होता है । Electro Motive Force । और एक करैण्ट होती है और एक Resistance होती है । तो हमारे अन्दर जो एनर्जी है वह क्या है ? जो दुनियाँ की ख्वाहिशात हैं, दुनिया के जो झगड़े हैं, दुनियाँ की जो विपदा हैं ये तो हैं Resistance और जो हमारा मन Think करता है, जिस तरह से बिजली लैम्प जलाती है, रेडियो चला रही है, इस तरह से हमारा मन सारा कार्य करता है वह हम में करैण्ट हैं । हम आये कहाँ से हैं ? Electro Motive Force से, वह है Light and Sound । चूँकि Light कभी पैदा नहीं होती जब तक कोई चीज़ हरकत में न आये या किसी के साथ ठोकर न लगे, तो हमारा आप जो है Light and Sound है । इसवास्ते सन्तों के मार्ग में सुरत-शब्द योग है । इसको नाम कहा जाता है । दुनिया ने सिर्फ यह समझा हुआ है कि किसी ने बता दिया राम-राम जपा कर, अल्लाह-अल्लाह जपा कर, किसी ने

कह दिया पाँच नाम जपा कर, किसी ने कह दिया राधास्वामी जपा कर। मैं यह नहीं कहता कि ये सब ग़लत हैं यह भी ठीक है पर किसके लिए, जिस तरह से स्कूल में बच्चों का पहाड़े जबानी याद कराते हैं—दो दूनी चार, तीन दुनी छः, चार दुनी आठ, उस वक्त उनको यह पता नहीं होता कि बारह-बारह एक सौ चवालीस कैसे हुए मगर बच्चे जबानी याद करते हैं।

इसवास्ते सुमिरन, ध्यान जो है एक किस्म के बच्चों के पहाड़े हैं। असली नाम जो है वह इस मन के परे जाना है। उस समय मैं तो जान नहीं सकता था और दाता से बहुत प्रेम करता था (जैसे यह सरदार मुझसे प्रेम करता है) तो वह क्या कहते हैं मैं आप लोगों को सत्संग कराये देता हूँ--

'काहे बौराना हाय फकीरवा'

यह उस वक्त का लिखा था जब मैं दाता से पूरा प्रेम करता था। लोग मेरे पास आते हैं कुछ मांगते हैं लेकिन मैं जाता था दाता को देने के लिए। सोने के ताज, चाँदी के हुक्के, रेशम के कपड़े ये सब देने के लिए जाता था। जब मेरी यह हालत थी उस वक्त लिखते थे—

'काहे बौराना हाय फ़कीरवा'

अब तुम सोचो कि हाय का लफ्ज़ कब कहा जाता है, जब कोई मरा हुआ हो या बहुत बड़ा नुकसान हुआ हो। तो मेरा दाता से कुछ ज्यादा प्रेम था उसको वह हाय कहते हैं कि क्यों पागल हो गया है फ़कीरचन्द ?

'काहे बौराना हाय फ़कीरवा
तेरे घर में माल खज़ाना भया दीवाना,
हाय फ़कीरवा, काहे बौराना ।'

वह मुझे कहते हैं कि तू किस वास्ते पागल हो गया है

जो कुछ है वह तेरे घर में है। गुप्ता, तुमने मुझे बुलाया। मैं चाहता हूँ कि मेरी बात तुम्हारी समझ में आ जाये जिससे तुम दूसरों के मोहताज न बनो। बार-बार किसी दूसरे गुरुओं को छुओ नहीं, वह तुम्हारे अन्तर में हैं। वह लोग हाय-हाय इस्तेमाल करते हैं तुमको मालूम है कि हाय-हाय जनानियाँ पीटती हैं। जब कोई मर जाता है या कोई नुकसान हो जाता है उस समय सब हाय-हाय करते हैं। वह मेरे उस काम को हाय-हाय कहते हैं कि तू गलती पर है। वह मुझे कहते हैं :—

'जाकी चाह में खोजत डोले, मन में समाना हाय फकीरवा
काहे बौरना ।।'

गुप्ता जी यह मैं आपको सुझा रहा हूँ और सरदार को सुझा रहा हूँ। पागल मत बनो। खुशी से, प्रेम से, मुहब्बत से जो तुम्हारी मर्ज़ी है, दो। उसकी मैं परवाह नहीं करता मगर मैं तुम लोगों की आँखों में मिट्टी डालकर तुम लोगों से पैसे लेकर नहीं जाना चाहता। चन्द दिन की ज़िन्दगी है, मर जाना है। आज जो आया था उसको Paralysis था, वह उसका कर्म था। कभी दुःख है, कभी सुख है। हमारे कर्मों का फल हमको मिलता है। यह बीमार रहता है इसको अपने कर्मों का फल मिलता है। आगे—

'तीरथ बरत सभी तेरे भीतर,
नहीं कहीं जाना हाय फकीरवा।
राधास्वामी चरण शरण बलिहारी,
नित गुण गाना हाय फ़कीरवा।
काहे बौराना हाय फकीरवा ।'

अब तुम समझ गये। बाकी सज्जन आये हैं अपनी-२ बुद्धि के अनुसार आप समझें। जो कुछ है गुप्ता वह तेरे दिल के अन्तर है। बाहर के गुरु की यह Duty है कि वह

तुमको बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी बना दे। सन्त जीवों का भार उठाते हैं ; दुनिया ने यह समझा हुआ है कि उनके कर्म ले लेते हैं। जीवन भार क्या है ? जिस तरह छोटे बच्चे पर माँ हर वक्त नज़र रखनी है कहीं आग में न गिर जाये, कहीं चाकू से उँगली न काट ले, कहीं गिर न जाये, नज़र रखती है कि नहीं रखती है। माँ बच्चे का भार उठाती है। कहीं चेला ग़लती करता है उसको समझ नहीं आती तब गुरु उसको समझाता है कि भई, ऐसे नहीं ऐसे करो। समझते हो ! लड़कियो ! सब माँ-बाप के कहने पर चला करो। अपन मर्ज़ी करने से कुछ फ़ायदा नहीं। तो मैंने आपको बोला कि सुरत से निहारो। यह काम मुश्किल है, क्यों ? आप लोगों के लिए मुश्किल है, क्यों ? नाम उनको मिलना चाहिए :—

विषयों से जो होय उदासा, परमारथ की जा मन आसा।
धन सन्तान प्रीत नहीं जाके, खोजत फिरे साधु गुरु जागे॥

उनके लिए नाम है। आजकल हम गुरुओं ने क्या कर रखा है कि जो भी आया उसको नाम दे दिया और उसने समझ लिया कि हमने नाम ले लिया और हम तर गये। अरे ! इस तरह से नाम लेने से कोई तर नहीं सकता, जब तक इन्सान यह शर्तें पूरी न करे जो कबीर साहिब की बातें मैंने पहले भी सुनाई हैं आपको और अब भी सुना रहा हूँ। लेकिन यह चूँकि मुश्किल काम है इसलिए आपलोग इसके अधिकारी नहीं हैं। आप लोग दुनियादार हैं, इसलिए आप लोगों को दुनिया की बातें बताये देता हूँ। दुनिया में जो कुछ हमको मिलता है वह हमारा कर्म है। आप उसका सबूत मांगेंगे। मैं तुमको दुनिया का सबूत दिये देता हूँ। तुम रात को स्वप्न में चले जाते हो तुमको गुस्सा आता है, किसी को मुक्का मारते हो तुम्हारा हाथ हिलता है, किसी

को ठोकर मारते हो तुम्हारा पाँव हिलता है, तुम खौफ़नाक दृश्य देखते हो तुम्हारी ज़बान बड़बड़ाती है। औरतों का मुझे पता नहीं, तुम मद हो एक ख्याली औरत अपने दिमाग़ के अन्दर बना लेते हो, तुम्हारा वीर्य बाहर हो जाता है। वे जो स्वप्न के ख्यालात हैं जो तुम्हारे अपने वश के नहीं हैं, जिस किस्म के Subconcious mind (चित्रगुप्त) पर पड़े हुए हैं वे शक्लें बनाकर तुम्हारे सामने आते हैं, तो जब जो ख़्याल तुम स्वप्न में करते हो और वह तुम्हारे वश में भी नहीं है तो जो चीज़ तुम्हारे वश में है, जागृत में जो तुम करते हो उसका असर तुम्हारे जिस्म पर क्यों नहीं पड़ेगा। किसी की हम निन्दा करते हैं, किसी की हम बुराई करते हैं, कोई लड़का माँ-बाप का कहा नहीं मानता, कहीं भाई-भाई से दुश्मनी है, किसी औरत-खाविंद की नहीं बनती। आप अपने कर्मों से कैसे बच सकते हैं? ख्याल एक ताक़त है, रास्ता है। मैंने आपको सबूत दे दिया कि स्वप्न का ख्याल, जो तुम्हारी मर्जी में नहीं है, तुम्हारी will नहीं है जब उसका असर तुम्हारे जिस्म पर पड़ता है तो जो कुछ काम हम ज़िन्दगी में करते हैं इसका असर तुम्हारे जिस्म पर क्यों न पड़ेगा? बीमारी भी आयेगी, दुःख भी होगा, सब कुछ होगा। न्यूटन की थ्यौरी सुन लो। न्यूटन ने थ्यौरी निकाली है कि जहाँ आदमी का हाथ हिलता है और उसकी हरकत जहाँ से निकलती है वह सितारों तक जाती है और वहाँ से फिर वापस आती है जहाँ से हरकत निकलती है। उसने Gross Matter के मुतल्लक़ ज़िक्र किया। हम ख़्यालात करते हैं यह Subject Matter है जैसे तुम ख़्याल करोगे वैसे ख़्यालात तुम्हारे दिमाग़ से निकलकर सितारों तक जायेंगे, फिर वे वापिस आयेंगे। अगर तुम शरीर पहले

छोड़ गये तो वे तुम्हारे प्रारब्ध कर्म बन जायेंगे और तुमको उसका सुख या दुःख भोगना पड़ेगा। तुम बच कैसे सकते हो ? सत्संग की यही महिमा है कि तुमको सच्चाई ब्यान कर दी जाये। इसवास्ते वेद कहते हैं 'शिवसंकल्पमस्तु'। मन, वचन, कर्म से शुद्ध रहो। इसी असूल के मुताबिक हमारी Duty है। औरत की Duty खाविंद के मुतल्लक़, खाविंद की Duty औरत के मुतल्लक़, बेटे की Duty बाप के मुतल्लक़, बाप की Duty बेटे के मुतल्लक़ सबका अपना-अपना फ़र्ज़ है। ताकि ख़्यालात इन्सान के शुद्ध रहें।

मनुष्य ने जो किया है उसकी सज़ा उसको मिलेगा। औरत को सबसे बड़ी सज़ा यह मिलती है कि या तो उसके खाविंद को कुछ हो जाये या उसके बच्चों को। मैं १८ रेलवे मंडी में मकान बना रहा था। मकान का नक्शा बन रहा था मेरा दामाद आ गया उसने नक्शा देखा। उसने बाला कि आपके दो लड़के हैं, आप ऐसा मकान बनाओ कि दोनों में बराबर-२ बँट जाये। मैंने कहा, "तुम यह शुक्र करो कि एक बच जाये"। मैं यह कह कर चला गया। करीमपुर में स्टेशनमास्टर था। मैं अपने दोस्त को कह गया था कि वह मकान बना ले, उसने मकान बनवा दिया। मेरा बड़ा लड़का वहाँ बीमार हुआ, मैंने डाक्टर को बुलाकर लड़के को दिखाया डाक्टर को दस रुपये फीस दी। मैंने कहा, 'लड़का बीमार है" डाक्टर ने कहा मामूली मलेरिया है ठीक हो जायेगा। मैंने कहा "अगर तुम ठीक कर दो तो तुम जो कहोगे मैं तुम्हें दूँगा।" डाक्टर ने कहा स्टेशनमास्टर साहिब ! आपका दिमाग़ ठीक है ? मैंने कहा ठीक है। मैंने क्यों कहा ? अपनी औरत के ख़्यालात को देखकर मैंने Judge किया कि औरत की सबसे बड़ी सज़ा यही है कि या तो

उसके बच्चे को कुछ हो जाये या उसके खाविंद को। मैंने कहा "इसको सज़ा मिलेगी"। लड़का मेरा मर गया। दो साल मेरी औरत रोती रही। यह मैं आपको अपनी ज़िन्दगी के तजुर्बे बताता हूँ। इसवास्ते बार-बार कहता हूँ कि घरों में शान्ति रखा करो जहाँ शान्ति होगी वहाँ बड़ा अच्छा है। हमारे पंजाब में कहावत है "जिस घर कलह कलंतर वस्से, उस घर घड़यों पानी नस्से।" यह मैंने आज़माया हुआ है। मेरी साली थी वह मेरे ताये के लड़के को ब्याही हुई थी। उसकी और उसकी सास की आपस में नहीं बनी। मैं जाता कई बार कहता ब्रह्मिये! आदमी बन जाओ आपस में लड़ाई मत करो। मगर मेरी सुनता कौन था? उनके घर डाका पड़ा, जो कुछ घर में था चला गया। खाविंद पाँच साल दमे की बीमारी से परेशान रहकर मर गया। पत्नी भी टी. बी. से मर गई। मैंने अपने घर की मिसालें दीं, दूसरों की मिसालें दूँगा तो बुरा है।

बसरा-बग़दाद का मेरा एक मित्र था। उसकी पत्नी की तथा लड़के की नहीं बनी। वह जब भी मेरे पास आता अपने घर के दुखड़े रोता। मैंने कहा, "भई पुरुषोत्तम दास! तेरे ऊपर कोई मुसीबत आयेगी।" उसके एक ही पोता था वह मर गया। मेरे पास आया मैंने कहा, "भई जो होना था वह हो गया। जो कुछ हमारे साथ, तुम्हारे साथ होता है कर्मों के अनुसार होता है इसलिए अपने कर्मों को ठीक रखो। कर्म को ठीक करने का सबसे बेहतर इलाज यह है कि अपनी नीयत को साफ रखो। अपनी ज़ाती गरज़ के लिए किसी के साथ हेराफेरी, धोखा-फरेब, चारसौबीसी मत करो। मैंने जो समझा है वह मैं आपको कहता हूँ। मगर मैं यह दावा नहीं करता कि मैं जो आपको कहता हूँ वह

जब मनुष्यों का मन शुद्ध और दृढ़ था'—उसमें भी इसी सार्वभौमिक सत्य का संकेत मिलता है। उस समय मृत्यु नहीं थी, किसी प्रकार का अशुभ या दुःख नहीं था और वर्तमान युग उसी उन्नत अवस्था का भ्रष्टभाव मात्र है। जगत् की भ्रष्टता क्रमशः बढ़ती गई। इसके बाद जब प्रलय हुआ तो अधिकाँश जगत् उसमें डूब गया। फिर उन्नति आरम्भ हुई और अब यह जगत् अपनी उसी प्राचीन अवस्था को प्राप्त करने के लिए धीरे-धीरे अग्रसर हो रहा है। पाश्चात्य विचारक हक्सले ने ऐसा कहा है, "इतना कहना ही बहुतों के लिए पर्याप्त है! हमलोग सचमुच अन्धविश्वास से मुक्त हैं! पहले था धर्म का अन्धविश्वास, अब है विज्ञान का अन्धविश्वास; फिर भी पहले के अन्ध-विश्वास से जीवनप्रद आध्यात्मिक भाव आता था, पर आधुनिक अन्धविश्वास के भीतर से तो केवल काम और लोभ ही आ रहे हैं। वह अन्धविश्वास था ईश्वर की उपासना को लेकर, और आजकल का अन्धविश्वास है महाघृणित धन, यश और शक्ति की उपासना को लेकर। बस यही भेद है।"

हाँ, तो प्रश्न के वास्तविक उत्तर की खोज की बात चल रही थी। मानव-शरीर की रचना कौन करता है, कौन-सी शक्ति प्रकृति में पड़ी हुई जड़ वस्तु के ढेर में से लेकर आपका शरीर एक प्रकार का और मेरा शरीर दूसरे प्रकार का निर्मित कर डालती है? ये सब अनन्त विभेद कैसे होते हैं? यह कहना कि आत्मा नामक शक्ति शरीर के भौतिक परमाणुओं के विभिन्न संघातों से उत्पन्न होती है, ठीक वैसा ही है जैसे बैल के आगे गाड़ी को जोतना। ये संघात कैसे उत्पन्न हुए? किस शक्ति ने ऐसा कर दिया? यदि हम कहें कि अन्य शक्ति ने यह संघात कर दिया है और आत्मा, जो इस समय एक विशेष जड़राशि के साथ

संहत दिखाई दे रही है, इन्हीं सब जड़ परमाणुओं के संघात का फल है, तब तो यह कोई उत्तर न हुआ। अतएव यही बात युक्ति-संगत है जो शक्ति जड़तत्त्व को लेकर उससे शरीर का निर्माण करती है और जो शक्ति शरीर के भीतर व्यक्त है, वे दोनों एक ही हैं। शक्ति कभी जड़तत्त्व से उत्पन्न हो ही नहीं सकती। बल्कि यह प्रमाणित करना अधिक सम्भव है कि हम जिसे जड़ कहकर पुकारते हैं उसका अस्तित्व ही नहीं है, वह केवल शक्ति की एक विशेष अवस्था है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि ठोसपन, कठिनता आदि जो सब जड़ के गुण हैं, वे गति के ही फल हैं। द्रवों को प्रचुर शीर्षीय गति देने से वे ठोस हो जायेंगे। वायुपुंज में यदि अतिशय शीर्षीय गति उत्पन्न कर दी जाये, जैसे तूफान में, तो वह ठोस-सा हो जाता है और अपने आघात से ठोस पदार्थों को तोड़ या काट सकता है। यदि मकड़ी के जाले के एक तन्तु को अनन्त वेग दिया जाये तो वह लोहे की जंजीर जैसा ही सशक्त हो जायेगा और ओक पेड़ को काटकर पार हो जायेगा। इस प्रकार से विचार करने पर यह सिद्ध करना सहज है कि हम जिसे जड़तत्त्व कहते हैं, उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है।

शरीर के भीतर यह जो शक्ति की अभिव्यक्ति देखी जाती है, यह है क्या ? हम सभी यह बात सरलता स समझ सकते हैं कि यही शक्ति, फिर वह चाहे जो हो, जड़ परमाणुओं को लेकर उनसे एक विशेष आकृति—मनुष्यदेह—तैयार कर रही है। अन्य कोई आकर आपके या हमारे शरीर को नहीं बना देता। ऐसा मैंने कभी नहीं देखा कि दूसरा कोई मेरे लिए भोजन कर लेता हो और शक्ति मुझे मिल जाती हो। मुझे ही इस भोजन का सार शरीर में लेकर उससे रक्त,

माँस, अस्थि आदि का गठन करना पड़ता है। यह अद्‌भुत शक्ति क्या है ? वह शक्ति क्या है जो इस समय हममें काम कर रही है ? सभी प्राचीन शास्त्रों में इस शक्ति को, इसी शक्ति की अभिव्यक्ति को शारीरिक आकृति वाला एक ऐसा ज्योतिर्मय पदार्थ (प्रकाश तत्त्व) माना गया है जो इस शरीर के नष्ट हो जाने पर भी बचा रहता है; आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं ने उसे जीवसार (Protoplasm) कहा है। उसे केवल ज्योतिर्मय देह कहने से संतोष नहीं होता—एक और भी उच्चतर भाव लोगों के मन पर अधिकार किये दिखाई देता है। वह यह है कि किसी भी प्रकार का शरीर शक्ति का स्थान नहीं ले सकता। जिस किसी वस्तु को आकृति है, वह बहुत से परमाणुओं की एक संहति (संगठन) मात्र है, अतएव उसको चलाने के लिए कोई दूसरी चीज़ होनी चाहिए। यदि इस शरीर का गठन और परिचालन करने के लिए भी इससे भिन्न अन्य कोई वस्तु चाहिए। यह 'अन्य कोई वस्तु' ही संस्कृत भाषा में आत्मन् अर्थात् आत्मा नाम से सम्बोधित हुई है। यह आत्मा ही इस ज्योतिर्मय देह में से मानो स्थूल शरीर पर कार्य कर रही है। यह ज्योतिर्मय शरीर ही मन का आधार कहा जाता है और आत्मा इसके अतीत (परे) है। आत्मा मन भी नहीं है, वह मन पर कार्य करती है और मन के माध्यम से शरीर पर। आपकी एक आत्मा है, मेरी भी एक आत्मा है—सभी के अलग-अलग आत्मा है और एक-एक सूक्ष्म शरीर भी; इस सूक्ष्म शरीर की सहायता से हम स्थूल शरीर पर कार्य करते हैं।

अब फिर प्रश्न खड़ा होता है—आत्मा और उसके

स्वरूप के सम्बन्ध में। शरीर और मन से पृथक् इस आत्मा का स्वरूप क्या है? वैसे तो भिन्न-भिन्न दर्शनों (धर्म, अध्यात्म-दर्शन) का इस विषय में मतैक्य देखा जाता है कि आत्मा का स्वरूप जो कुछ भी हो, उसका कोई रूप, आकार नहीं होता और जिसका कोई रूप, आकार नहीं, वह अवश्य सर्वव्यापी होगा। काल (समय) का आरम्भ मन से होता है—देश (स्थान) भी मन के अन्तर्गत है। काल को छोड़कर कार्य-कारणवाद नहीं रह सकता। क्रम की भावना के बिना कार्य-कारणवाद नहीं रह सकता। अतएव, देश-काल-निमित्त (पात्र) मन के अन्तर्गत है और यह आत्मा, मन से अतीत और निराकार होने के कारण, देश-काल-पात्र (निमित्त) के परे है। और जब देश-काल-निमित्त से अतीत है, तो अवश्य अनन्त होगी। अब दर्शन का उच्चतम विचार आता है। अनन्त कभी दो नहीं हो सकता। यदि आत्मा अनन्त है तो केवल एक ही आत्मा हो सकती है और यह जो अनेक आत्माओं की धारणा है—आपकी एक आत्मा, मेरी एक आत्मा—यह सत्य नहीं है। अतएव मनुष्य का प्रकृत स्वरूप एक ही है, वह ही अनन्त और सर्वव्यापी है, और यह प्रातिभासिक जीव, मनुष्य के इस वास्तविक स्वरूप का एक सीमाबद्ध भाव मात्र है। इसी अर्थ में पूर्वोक्त पौराणिक तत्त्व भी सत्य हो सकते हैं कि प्रातिभासिक जीव चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो, मनुष्य के इस अतीन्द्रिय, प्रकृत स्वरूप का धुँधला प्रतिबिम्ब मात्र है। अतएव मनुष्य का प्रकृत स्वरूप—आत्मा—कार्य-कारण से अतीत होने के कारण, देश-काल से अतीत होने के कारण, अवश्य मुक्तस्वभाव है। वह कभी बद्ध (बंधन में) नहीं थी, न ही बद्ध हो सकती थी। यह प्रातिभासिक जीव, यह प्रतिबिम्ब, देश-काल-पात्र के द्वारा सीमाबद्ध होने के कारण बद्ध है। अथवा हमारे कुछ दार्शनिकों की भाषा में,

'प्रतीत होता है, मानो वह बद्ध हो गई है, परन्तु वास्तव में बद्ध नहीं है'। हमारी आत्मा के भीतर जो यथार्थ सत्य है, वह यही कि आत्मा सर्वव्यापी है, अनन्त है, चैतन्य-स्वभाव (Conscious by nature) है ; हम स्वभाव से ही वैसे हैं—हमें प्रयत्न करके वैसा नहीं बनना पड़ता। ये दोनों सापेक्ष (Relative condition ; Time & space) देश में है। जो अनन्त है, वह कहाँ जायेगी और कहाँ से आयेगी ?

जब मनुष्य भूत और भविष्य की चिन्ता का—उसका क्या होगा, इस चिन्ता का त्याग कर देता है, जब वह देह को सीमाबद्ध और उत्पत्ति-विनाशशील जानकर देहाभिमान का त्याग कर देता है अर्थात् सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतर अहंकार का, तब वह एक उच्चतर आदर्श में पहुँच जाता है। देह भी आत्मा नहीं और मन भी आत्मा नहीं ; क्योंकि इन दोनों में ह्रास और वृद्धि होती है। जड़ जगत् आत्मा से अतीत आत्मा ही अनन्तकाल तक रह सकती है। शरीर और मन सतत (हर क्षण) परिवर्तनशील है। वे दोनों परिवर्तनशील कुछ घटना-श्रेणियों (घटना-क्रम) के केवल नाम हैं। वे मानो एक नदी के समान हैं, जिसका प्रत्येक जल-परमाणु सतत चलायमान (गतिशील) है, फिर भी वह नदी सदा एक अविच्छिन्न प्रवाह-सी दिखती है। इस देह का प्रत्येक परमाणु सतत परिणामशील है; किसी भी व्यक्ति का शरीर, कुछ क्षण के लिए भी एक समान नहीं रहता। फिर भी मन पर एक प्रकार का संस्कार बैठ गया है, जिसके कारण हम इसे एक शरीर ही समझते हैं। मन के सम्बन्ध में भी यही बात है ; क्षण में सुखी, क्षण में दुःखी ; क्षण में सबल और क्षण में दुर्बल ! यह सतत परिणामशील भँवर के समान है। अतएव मन भी आत्मा नहीं हो सकता ; आत्मा तो

अनन्त है। परिवर्तन केवल समीप वस्तु में ही सम्भव है। अनन्त में किसी प्रकार का परिवर्तन हो, यह एक असम्भव बात है। यह कभी नहीं हो सकता। शरीर की दृष्टि से आप और मैं एक स्थान से दूसरे स्थान को जा सकते है; जगत् का प्रत्येक अणु-परमाणु नित्य परिणामशील हैं; परन्तु जगत् को एक समष्टि के रूप में लेने (मानने पर उसमें गति या परिवर्तन असम्भव है। गति सर्वत्र सापेक्ष हे। मैं जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर (को) जाता हूँ, तब किसी वस्तु के संदर्भ (प्रयोजन) में ही। जगत् का कोई परमाणु किसी दूसरे परमाणु की तुलना में ही परिणाम को प्राप्त हो सकता है; किन्तु सम्पूर्ण जगत् को एक समष्टिरूप में लेने पर फिर किसकी तुलना में उसका स्थान-परिवर्तन होगा? इस समष्टि के अतिरिक्त और कुछ तो है ही नहीं। अतएव यह अनन्त इकाई अपरिणामी, अचल और निरपेक्ष (Absolute) है, और यही पारमार्थिक सत्ता है। अतः हमारा सत्य सर्वव्यापकता में है, सान्तता में नहीं। यह धारणा कि मैं एक क्षुद्र, सान्त, सतत परिणामी जीव हूँ, कितनी ही सुखद क्यों न हो, फिर भी यह पुराना भ्रम ही है। यदि किसी से कहें कि "आप सर्वव्यापी, अनन्त पुरुष हैं," तो वह डर जायेगा। सबके माध्यम से आप ही कार्य कर रहे हैं, सब पैरों द्वारा आप ही चल रहे हैं, सब मुखों से आप ही बातचीत कर रहे हैं, सब हृदयों से आप ही अनुभव कर रहे हैं।

यदि ऐसी बातें हम किसी से कहें, तो वह डर जायेगा। वह बार-बार पूछेगा कि क्या फिर उसका अपना अस्तित्व (Self-existence) नहीं रह जायेगा? क्या मैं नहीं रह जाऊँगा? यह व्यक्तित्व—मैं—क्या है? यदि जान जाऊँ,

तो अच्छा है। इसे इस तरह से समझें कि 'छोटे बालक के मूँछें' नहीं होतीं। बड़े होने पर उसके दाढ़ी-मूँछ निकल आती हैं'।' यदि अहं शरीर में रहता, तब तो बालक का 'व्यक्तित्व' नष्ट हो गया होता। यदि 'अहं' या 'व्यक्तित्व' शरीरगत होता, तब तो हमारी एक आँख अथवा हाथ नष्ट हो जाने पर वह नष्ट हो जाता। फिर शराबी का शराब छोड़ना ठीक नहीं, क्योंकि तब तो उसका व्यक्तित्व ही नष्ट हो जायेगा! चोर का साधु बनना भी ठीक नहीं, क्योंकि इससे वह अपना व्यक्तित्व खो बैठेगा! तब तो फिर कोई भी अपनी आदतें छोड़ना ही नहीं चाहेगा। पर सत्य यह है कि अनन्त को छोड़कर और किसी में व्यक्तित्व है ही नहीं। केवल इस अनन्त का ही परिवर्तन नहीं होता और शेष सभी का सतत परिवर्तन होता रहता है। 'व्यक्तित्व-भाव' स्मृति में भी नहीं है, स्मृति में यदि 'व्यक्तित्व-भाव' रहता, तो मस्तिष्क में गहरी चोट लगने से स्मृति-लोप हो जाने पर, वह नष्ट हो जाता अर्थात् व्यक्तित्व-भाव; हमारा बिल्कुल लोप हो जाता। किसी को भी अपने बचपन के पहले दो-तीन वर्ष का कोई स्मरण नहीं होता है और यदि स्मृति और अस्तित्व एक है, तो फिर कहना पड़ेगा कि इन दो-तीन वर्षों में अस्तित्व ही नहीं था। तब तो, जीवन का जो अंश स्मरण नहीं, उस समय वह जीवित नहीं था—यही कहना पड़ेगा। यह 'व्यक्तित्व' का बहुत ही संकीर्ण (संकुचित) अर्थ है।

हम अभी तक 'व्यक्ति' नहीं हैं। हम इसी 'व्यक्तित्व' को प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं और वह अनन्त है, वही मनुष्य का प्रकृत स्वरूप है अर्थात् वास्तविक रूप है, जिनका जीवन सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त किये हुए है, वे

ही जीवित हैं, और हम जितना ही अपने जीवन को शरीर (तन.मन) आदि जैसे छोटे-२ सान्त पदार्थों से बाँधकर रखेंगे, उतना ही हम मृत्यु की ओर अग्रसर होंगे। जितने क्षण हमारा जीवन समस्त जगत् में व्याप्त रहता है, दूसरों में व्याप्त रहता है, उतने ही क्षण हम जीवित रहते हैं। इस क्षुद्र जीवन में अपने को बद्ध रखना ही तो मृत्यु है, और इसी कारण तो हम सभी को मृत्यु का भय होता है। मृत्यु-भय पर तो तभी विजय हो सकती है, जब मानव यह समझ ले कि जब तक जगत् में एक भी जीवन शेष है, तब तक वह भी जीवित है। जब यह अनुभव कर ले, तब वह कह सकता है कि "मैं सब वस्तुओं में, सब देशों में, सब प्राणियों में वर्तमान हूँ; मैं ही सब जगत् हूँ, सम्पूर्ण जगत् ही मेरा शरीर है। जब तक एक भी परमाणु शेष है, तब तक मेरी मृत्यु कहाँ? कौन कहता है कि मेरी मृत्यु होगी?" तब ऐसे व्यक्ति निर्भय हो जाते हैं अर्थात् अभय-पद में स्थिति हो जाती है—तभी निर्भीक अवस्था आती है। प्राचीन भारतीय दर्शन में—'आत्मा अनन्त है, इसलिए आत्मा ही 'व्यक्ति-अविभाज्य' हो सकती है।' अनन्त का विभाजन नहीं किया जा सकता—अनन्त को खण्ड-खण्ड नहीं किया जा सकता। वह सदा एक है, अविभक्त समष्टिस्वरूप अनन्त आत्मा ही है और वही व्यक्ति मानव का यथार्थ 'व्यक्तित्व' (स्वरूप) है, वही 'प्रकृत मनुष्य' है। 'मनुष्य के नाम से हम सभी जिसको जानते हैं, वह इस 'व्यक्तित्व' को व्यक्त जगत् में अभिव्यक्त करने के संघर्ष का फल मात्र है; 'क्रम-विकास' आत्मा में नहीं है।

यह जो सब परिवर्तन हो रहा है—बुरा व्यक्ति भला हो रहा है, पशु मनुष्य हो रहा है—यह सब कभी आत्मा

में नहीं होता। कल्पना करें कि एक पर्दा आपके सामने है और उसमें एक छोटा-सा छिद्र (छेद, Hole) है, जिसमें से आप केवल कुछ चेहरे देख पाते हैं। यह छिद्र जितना बड़ा होता जाता है, सामने का दृश्य उतना ही अधिक आपके सम्मुख स्पष्ट (प्रकाशित) होता जाता है और जब यह छिद्र पूरे पर्दे को व्याप्त (अर्थात् पर्दे का मिट जाना या कि छेद इतना बड़ा हो गया कि पर्दा ही न बचा) कर लेता है, तब आप सब कुछ स्पष्ट देख लेते हैं। यहाँ पर, आपमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ; आप जो थे, वही रहे। केवल छिद्र का क्रमविकास होता रहा और उसके साथ-साथ आपकी अभिव्यक्ति क्रमशः अधिक होती रही या इसे ऐसे कहें कि आपके ज्ञान का क्षेत्र, धीरे-धीरे विकसित होता गया और आपके दृष्टिकोण में व्यापकता आती गई। आत्मा के सम्बन्ध में यही बात है। किसी पूर्णता को उपलब्ध नहीं करना है। आप पहले से ही मुक्त और पूर्ण हैं।

धर्म, ईश्वर (परमात्मा या परलोक सम्बन्धी ये सब धारणाएँ कहाँ से आईं? मनुष्य, 'ईश्वर, ईश्वर' करता क्यों फिरता है? सभी देशों में, सभी समाजों में मानव क्यों पूर्ण आदर्श का अन्वेषण (Research : खोज) करता फिरता है—भले ही वह आदर्श मनुष्य में हो या ईश्वर में अथवा अन्य किसी वस्तु में? इसलिए कि वह भाव हमारे-आपके भीतर ही जन्म से विद्यमान है। वह थी हमारे, आपके हृदय की धड़कन और हम उसे नहीं जानते थे; हम सोचते थे कि बाहर कोई वस्तु यह ध्वनि कर रही है। हमारी आत्मा में विराजमान ईश्वर ही हमें अपना अनुसन्धान करने को — अपनी उपलब्धि (आत्म-उपलब्धि) करने को प्रेरित कर रहा है अर्थात् आत्म-ज्ञान, वह हमारे निकट से भी निकट

हैं, प्राणों का प्राण है, हमारा शरीर है, हमारी आत्मा है—आप ही 'मैं' हैं, मैं ही 'आप' हूँ। यही हम सभी का स्वरूप है—इसी को हम अभिव्यक्त करें। सारी प्रकृति देश-कालातीत सत्य को परदे के समान ढाँके हुए है। आप जो कुछ भी अच्छा विचार या कार्य करते हैं, उससे मानो वह आवरण धीरे-धीरे क्षीण होता रहता है और देश-कालातीत (Beyond time and space) वह शुद्ध-स्वरूप, अनन्त ईश्वर स्वयं अभिव्यक्त होता रहता है।

यह आवरण जितना ही सूक्ष्म होता जाता है, उतना ही प्रकृति के पीछे स्थित प्रकाश भी अपने स्वभाववश क्रमशः अधिकाधिक दीप्त होता जाता है, क्योंकि उसका स्वभाव ही इस प्रकार दीप्त होना है। उसको जाना नहीं जा सकता; हम उसे जानने का व्यर्थ ही प्रयत्न करते रहते हैं। यदि वह ज्ञेय होता, तो उसका स्वभाव ही बदल जाता, क्योंकि वह स्वयं नित्य ज्ञाता है। ज्ञान एक सीमाबद्ध-भाव है; ज्ञान-लाभ करने के लिए ज्ञान को विषयाश्रित (अर्थात् विषय निर्भर) करना पड़ता है। वह तो सारी वस्तुओं का ज्ञाता है, सब विषयों का विषयीस्वरूप है, इस विश्व-ब्राह्माण्ड का साक्षिस्वरूप है, आपकी ही आत्मा है। प्रत्येक व्यक्ति वह आत्मा है और सब लोग विभिन्न उपायों से इसी आत्मा को जीवन में प्रकाशित (उजागर) करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यदि ऐसा न होता तो ये सब नीति-संहिताएँ कहाँ से आतीं? सारी नीति-संहिताओं का तात्पर्य क्या है? सभी नीति-संहिताओं में एक ही भाव भिन्न-भिन्न रूप से प्रकाशित आ है और वह है—दूसरों का उपकार करना। मनुष्यों के प्रति, सारे प्राणियों के प्रति दया ही मानव-जाति के समस्त सत्कर्मों (शुभकर्मों) का पथ-प्रदर्शक, प्रेरक है

और ये सब 'मैं ही विश्व हूँ, यह विश्व एक अखण्डस्वरूप है,' इसी सनातन सत्य के विभिन्न भाव मात्र हैं।

यदि ऐसा न हो, तो दूसरों का हित करने में भला कौन-सी युक्ति है? मैं क्यों दूसरों का उपकार करूँ? परोपकार करने को मुझे कौन बाध्य करता है? सर्वत्र समदर्शन से उत्पन्न जो सहानुभूति की भावना है उसी से यह बात प्रमाणित होती है। अत्यन्त कठोर हृदय वाला भी यदा-कदा दूसरों के प्रति दया से भर जाता है। और तो और, जो व्यक्ति 'यह आपात प्रतीयमान व्यक्तित्व वास्तव में भ्रम मात्र है; इस भ्रमात्मक व्यक्तित्व में आसक्त रहना अत्यन्त हीन कार्य है', ये सब बातें सुनकर भयभीत हो जाता है, वही व्यक्ति आपसे कहेगा कि सम्पूर्ण आत्मत्याग हो जाने पर क्या शेष रह जाता है? आत्मत्याग का अर्थ है, इस मिथ्या "व्यक्तित्व या आत्मा" का त्याग, सब प्रकार की स्वार्थपरता का त्याग। यह अहंकार और ममत्वपूर्ण कुसंस्कारों के फल हैं और जितना ही इस 'व्यक्तित्व' का त्याग होता चला जाता है, उतनी ही आत्मा अपने नित्यस्वरूप में, अपनी पूर्णता में अभिव्यक्त होती है। यही वास्तविक आत्मत्याग है और यही समस्त नैतिकता का आधार है, केन्द्र है। मानव इसे जाने या न जाने, समस्त जगत् धीरे-धीरे इसी दिशा में जा रहा है, ज़्यादा या कम मात्रा में इसी का अभ्यास कर रहे हैं हम सभी। बात केवल इतनी-सी है कि अधिकांश लोग अचेतन पूर्वक (Un-consciously) कर रहे हैं। हम सभी इसे चेतनपूर्वक Consciously) करें, यह ही आवश्यकता है। यह 'मैं और मेरा' प्रकृत आत्मा नहीं, किन्तु केवल एक सीमाबद्ध भाव है, यह जानकर हम सभी मिथ्या व्यक्तित्व को त्याग दें। आज जो मानव

(मनुष्य) नाम से परिचित है, वह जगत् के परे उस अनन्त सत्ता की एक झलक मात्र है, उस सर्वस्वरूप अनन्त प्रकाश का स्फुलिंग मात्र है ; किन्तु वह अनन्त ही उसका यथार्थ है।

आप सभी फिर प्रश्न करते हैं कि इस ज्ञान का फल— इस ज्ञान की उपयोगिता क्या है ? आधुनिक युग के सभी विषयों की उनकी उपयोगिता के माप-दण्ड से नापा जाता है अर्थात् संक्षेप में यह कि इससे कितने धन का लाभ, मान-पद आदि का लाभ होगा ? लोगों को इस प्रकार प्रश्न करने का क्या अधिकार है ? क्या सत्य को भी उपकार या धन, पद, मान से ही नापा जायेगा ? मान लें कि इसकी कोई उपयोगिता नहीं है, तो क्या सत्य इससे कम हो जायेगा, खो जायेगा या कि मिट जायेगा ? उपयोगिता सत्य का कसौटी नहीं है। जो भी हो, इस ज्ञान में ही समस्त उपकार तथा प्रयोजन भी है मानव समुदाय का। सुख तो केवल आत्मा में ही मिलता है। अतएव आत्मा में इस सुख की प्राप्ति ही मानव-जाति का सबसे बड़ा प्रयोजन है और एक बात यह है कि अज्ञान ही सब दुःखों की जननी है और मूलभूत अज्ञान तो यही है कि जो अनन्तस्वरूप है, वह अपने को सान्त मानकर रोता है, चिल्लाता है ; समस्त अज्ञान का आधार यही है कि हम अविनाशी, नित्य, शुद्ध, पूर्ण आत्मा होते हुए भी सोचते हैं कि हम छोटे-छोटे मन हैं, हम छोटी-छोटी देह मात्र हैं ; यह सारे स्वार्थपरता की जननी है। अतः पहले कही गई ज्ञान की प्राप्ति से लाभ यह होगा कि यदि वर्तमान मानव-जाति का बिल्कुल छोटा-सा अंश भी इस क्षुद्र, संकीर्ण और स्वार्थी भाव का त्याग कर सके तो कल ही यह संसार स्वर्ग में बदल जायेगा। आत्मा के ज्ञान के बिना जो कुछ भौतिक-ज्ञान अर्जित किया जाता

हैं, वह सब अग्नि (आग) में घी (घृत) डालने के समान है। उससे दूसरों के लिए प्राण उत्सर्ग कर देने की बात तो दूर ही रही, स्वार्थपर लोगों को दूसरों की चीजें हर (छीन) लेने के लिए, दूसरों का शोषण, रक्त पर फलने-फूलने के लिए एक और साधन (Medium)—एक और सुविधा मिल जाती है।

एक प्रश्न और खड़ा होता है—क्या यह व्यावहारिक है? वर्तमान समाज में क्या इसे कार्यरूप में परिणत किया जा सकता है? इसके उत्तर में कि "सत्य, प्राचीन अथवा आधुनिक किसी समाज का सम्मान नहीं करता। समाज को ही सत्य का सम्मान करना पड़ेगा, अन्यथा समाज नष्ट हो जायेगा।" समाजों को सत्य के अनुरूप ढाला जाना चाहिए, सत्य को समाज के अनुसार अपने को ढालना नहीं पड़ता। यदि निःस्वार्थपरता के समान महान् सत्य समाज में कार्य-रूप में परिणत न किया जा सकता हो, तो ऐसे समाज को छोड़कर वन में चले जाना ही बेहतर है (यथार्थ में वनों, पर्वत-कन्दराओं और एकान्तवास करने वाले साधु-सन्तों, ऋषि-मनीषियों, योगियों के अन्तःकरण में यही तथ्यानुभव या सत्यानुभव है और व्यवहार में रूपान्तरित किया इन लोगों ने)। इसी का नाम साहस है। साहस दो प्रकार का होता है। एक तो साहस यह है—तोप के मुँह में दौड़ जाना अर्थात् राष्ट्ररक्षा। दूसरे प्रकार का साहस है—आध्यात्मिक विश्वास और विकास। यदि हम सभी ऐसे समाज की रचना नहीं कर सकते, जिसमें सर्वोच्च सत्य को स्थान मिले तो अपने बाहुबल की, अपने पाश्चात्य अन्धानुकरण की श्रेष्ठता (भौतिक समृद्धि, आसक्ति) की बात करना ही व्यर्थ है। मेरा यही मत है—'वही समाज सबसे श्रेष्ठ है, जहाँ सर्वोच्च

सत्य (आत्मज्ञान, आत्मसंयम और आत्मत्याग) को कार्य-रूप में परिणत किया जा सकता है। और यदि समाज इस समय उच्चतम सत्य को स्थान देने में समर्थ नहीं है, तो उसे बनाएँ, और हम सभी जितना शीघ्र ऐसा कर सकें, उतना ही अच्छा है। यही धर्म है और मानव-जाति का लक्ष्यपूर्ण उद्देश्य है।

हे मेरी आत्मा के स्वरूप भाई-बहनो! उठें, आत्मा के सम्बन्ध में जागृत हों, सत्य में विश्वास करने का साहस करें, सत्य के अभ्यास का साहस करें। अपने में वह साहस लाएँ, जो सत्य को जान सके, जो जीवन में निहित सत्य को प्रकट कर सके, जो न मृत्यु से डरे बल्कि उसका स्वागत करे, जो मानव-जाति को यह ज्ञान करा दे कि वह आत्मा है और सारे जगत् में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो उसका विनाश कर सके। तब आप मुक्त हो जायेंगे। तब आप अपनी वास्तविक आत्मा को जान लेंगे। "इस आत्मा के सम्बन्ध में पहले श्रवण (सुनना) करना चाहिए; फिर मनन (विचार विमर्श) और तत्पश्चात् निदिध्यासन (अभ्यास, व्यवहार)।"

आजकल समाज में एक प्रवृत्ति देखी जा रही है और वह है—कार्य पर अधिक ज़ोर देना और विचार की निन्दा करना। कार्य अवश्य अच्छा है परन्तु वह भी तो विचार या चिन्तन से उत्पन्न होता है। शरीर के माध्यम (Medium) से शक्ति की जो छोटी-छोटी अभिव्यक्तियाँ (Expression) होती हैं, उन्हीं को कार्य कहते हैं। बिना विचार या चिन्तन के कोई भी कार्य नहीं हो सकता। अतः मस्तिष्क (बुद्धि) को ऊँचे-ऊँचे विचारों, ऊँचे-ऊँचे आदर्शों से भर लें और दिन-रात उनको अपने मन के सम्मुख (सामने) रखें; ऐसा होने

पर ही इन्हीं विचारों से बड़े-बड़े कार्य (जोकि सारी मानव-जाति के लिए कल्याणकारी सिद्ध होंगी) होंगे। अपवित्रता (अशुभ) की कोई बात मन में न लाएँ, प्रत्युत (बदले में) मन से कहें कि मैं शुद्ध, पवित्रस्वरूप हूँ। आप आत्मा हैं, शुद्ध, अनन्त और पूर्ण हैं। विश्व की अनन्त-शक्ति (महाशक्ति) आपके भीतर है।

हम सभी मानव को मानव के यथार्थ (वास्तविक) स्वरूप का ज्ञान हो और उसे सबल बनाएँ, जिनसे उनका कुछ यथार्थ हित हो। सच्चिन्तन के स्रोत में शरीर को बहा दें, अपने मन से सर्वदा कहते रहें, 'मैं ही वह हूँ, मैं ही वह हूँ'। आपके मन में दिन-रात यह बात संगीत की भाँति झंकृत होती रहे और मृत्यु के समय भी आपके अधरों पर 'सोऽहम्—सोऽहम्' प्रस्फुटित हो। यही सत्य है —जगत् की अनन्त शक्ति आपके भीतर है। साहसी बनें। सत्य को जानें और उसे अपने जीवन में परिणत करें। लक्ष्य भले ही बहुत दूर है, पर उठें, जागें और जब तक लक्ष्य तक न पहुँचें तब तक न रुकें। आत्म-ज्ञान के यात्रा-पथ के पथिक बनें और अपनी आत्मा के प्रकाश में प्रेम, शुभभावना और जीवन्त ईश्वर का दर्शन कर जगत् को प्रकाशित करें! बस, इतना ही और हम सभी उस परमतत्त्वाधार के समक्ष शुभ-संकल्प की भावना को आत्मसात् कर लें।

राधास्वामी!

आपका फ़कीरमय

मानव

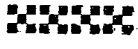

मासिक सन्देश

मेरे प्यारे सत्संगियो :

राधास्वामी, परमदयाल जी सहाई !

पिछले मासिक सन्देश में विदेशी दौरे सम्बन्धी दी गई सूचना को जारी रखते हुए, मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि हम १० जुलाई को न्यूयार्क से नई देहली के लिए रवाना हुए। न्यूजर्सी के सत्संगी श्री सुदर्शन लाल और उनकी पत्नी अरुणा जी हमें हवाई अड्डे तक छोड़ने के लिए आए और हमारे हवाई जहाज़ में अन्दर जाने तक रुके रहे। यद्यपि यात्रा बहुत लम्बी तथा थका देने वाली थी, फिर भी वह हमें इसलिए सुख देने वाली लगी, क्योंकि आपकी प्यारभरी प्रतीक्षा की मानसिक किरणों ने हमारे मन पर गहरा असर डाला। भारत से विदेश जाने के समय भी हमारे मन में खुशी इसलिए होती है कि आपके विदेशी भाई-बहन भी आपकी ही भाँति बड़े प्रेम तथा उत्साह से हमारे आने की प्रतीक्षा करते हैं।

रात के साढ़े ग्यारह बजे देहली हवाई अड्डे पर हमें यह देख कर खुशगवार हैरानी हुई कि वहाँ पर श्री विजय नरेश नेगी, श्री के० पी० वर्मा, श्री के० एल० अग्रवाल, डा० महेन्द्र नारंग, श्री एम० एल० बहल और श्रीमती सावित्री बहन तथा बिलारी से आए हुए सत्संगियों का समूह

मौजूद था। हम वहाँ से सीधे वर्मा जी के घर गए। देहली के सत्संगी एक बजे रात को अपने-२ घर वापिस गए। प्रातः छः बजे के करीब हम मैटाडोर से होशियारपुर के लिए रवाना हुए और दोपहर के तीन बजे मानवता मन्दिर में पहुँच गए। चार बजे शाम का सत्संग पहले से ही रख दिया गया था। बहुत से ऐसे सत्संगी जो दूर-२ से गुरु-पूर्णिमा के लिए आए हुए थे और दूसरे दिन प्रातः लौटने वाले थे, इसलिए उन्होंने १२ जुलाई की शाम को ही गुरुपूर्णिमा मना ली। गुरुपूर्णिमा का मुख्य उत्सव १२ जुलाई की प्रातः को ही सम्पन्न किया गया। दोनों सत्संगों में सत्संगियों ने बड़े उत्साह, प्रेम तथा आदर से भाग लिया।

गुरुपूर्णिमा का सालाना उत्सव गुरु की पूजा के लिए ही मुकर्रर होता है। इसका भारत के प्रायः सभी सम्प्रदायों, विशेषकर हिन्दु सम्प्रदाय के लिए खास रूहानी मतलब होता है। इस उत्सव को मनाने के लिए मुझे अमेरिका से जल्दी से जल्दी वापिस आना पड़ता है। इस गुरुपूर्णिमा को 'व्यासपूर्णिमा' भी कहा जाता है। आम तौर पर आध्यात्मिक गुरु की पूजा के लिए, इसे सभी वर्गों के अनुयायी बड़े उत्साह से मनाते हैं। हज़ारों साल पहले महर्षि वेदव्यास जी ने वेदों, उपनिषदों, पुराणों, भगवद्गीता आदि ग्रन्थों को सम्पादित किया, जिनमें ज्ञान, भक्ति, कर्म-काण्ड के साधनों की व्याख्या है। इसलिए हिन्दुओं में इसी दिन अपने-२ गुरु को महर्षि व्यास का रूप मान कर उसकी पूजा की जाती है।

सन्तमत अथवा मानवता धर्म पर चलाने वाले इस उत्सव को बड़े प्रेम, उत्साह तथा सत्कार से मनाते हैं। परमदयाल जी सत्संगियों को अपना सच्चा गुरु मानते थे। उनका कहना था कि जब सत्संगियों ने उन्हें यह खबर दी

कि फ़कीर बाबा का रूप मुसीबतों के समय प्रकट होकर उनकी मदद करता है, तो इसी एक सच्चाई के कारण परम-तत्त्व के असली रूप का सच्चा ज्ञान हो गया। वह सीधी-सादी भाषा में प्रायः कहा करते थे, "ऐ मेरे प्यारे सत्संगियो! तुम बार-बार मुझे यह कहते हो कि मेरे रूप ने प्रकट होकर तुम्हारी बीमारियां दूर कर दीं, तुम्हें दुर्घटनाओं से बचाया और तुम्हारे सूरतें चढ़ा दीं, जबकि मुझे इस बात का बिल्कुल पता ही नहीं होता, मुझे इस बात पर पूरा यकीन हो गया है कि ईश्वर का कोई भी रूप, जिसे सत्संगी देखते हैं, चाहे वह रूप राम का, कृष्ण का, बुद्ध का, ईसा मसीह का, मोहम्मद का या किसी जीवित या मरे हुए गुरु का क्यों न हो, बाहर से प्रकट नहीं होता। इसके साथ ही साथ प्रकट होने वाले व्यक्ति को इस बात का पता नहीं होता।"

इस सच्चाई से यह बात साफ हो जाती है कि अनेकों धर्मों और मत-मतान्तरों ने मानव समाज को एक बहुत बड़ी ग़लतफ़हमी में टुकड़े-२ कर दिया है। उन्होंने इस सच्चाई की तरफ़ ध्यान नहीं दिया कि सभी रूपों का एक ऐसा आधार है, जिसका कोई रूप नहीं है, जिसकी असली ज़ात वह परमतत्त्व है, जो परमदयाल और परम पुरुष है। आपस में लड़ने-झगड़ने वाले इन धर्मों के अनुयायियों ने इस सच्चाई की भी परवाह नहीं की कि हरएक आदमी असल में उसी एक अविनाशी, अनन्त, क़ायम और दायम तत्त्व का एक शोला है और उसका शरीर, मन और आत्मा, उसकी सुरत का फैलाव है। अतः फ़कीर बाबा ने नारा लगाया कि 'मनुष्य बनो', 'सच्ची मानवता अपनाओ', 'अपने मन की ताकत को सभी मनुष्यों से बेगर्ज़ प्यार करके बढ़ावा दो', 'अपने शरीर को ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए

स्वस्थ रखो और अपने माथे के बीच में तीसरी आँख पर ध्यान लगाते हुए आत्मा का आनन्द लो'।

सुरत-शब्द का यह अभ्यास न ही केवल अभ्यासी की छुपी हुई पूर्णता को प्रकट कर सकता है, बल्कि यह अभ्यास धर्मों तथा मत-मतान्तरों के आपसी झगड़ों को भी समाप्त कर सकता है। ये झगड़े समाप्त हो सकते हैं, क्योंकि सुरत-शब्द योग के अभ्यासी को, ईश्वर के अनेक मानसिक रूपों के पीछे एक ही तत्त्व का अनुभव हो जाता है। इसी कारण फ़कीर बाबा गुरुपूर्णिमा के मौके पर सत्संगियों की सराहना किया करते थे। वह बार-२ इस बात पर ज़ोर देते थे कि सत्संगी ही उनके सच्चे रूहानी गुरु हैं। सत्संगियों के उन अनुभवों ने, जिनमें कि फ़कीर बाबा का रूप प्रकट होता थ फ़कीर बाबा को उनकी उस असली ज़ात का ज्ञान दिया, जो मानसिक देश से परे होने के कारण चमत्कारों से भी परे है।

पिछले मासिक सन्देश में मैंने ये सवाल उठाए थे : एक पूर्ण सद्गुरु क्या कर सकता है ? उसको परम दया क्या है ? उसके चरण-कमल का क्या मतलब है ? मैंने अनायास ही पहले सवाल का जबाब ऊपर दे दिया है। एक पूर्ण गुरु हमेशा उस पूर्णता का ऊँचा ज्ञान देता है जो हरएक मनुष्य में मौजूद है। इस सच्चाई को अपने अनुभव द्वारा जानने के बाद एक पूर्ण गुरु उसी ही अनुभव को अपने शिष्य में जगा देता है। जब आप ऐसे सद्गुरु का सत्संग सुनोगे तो आपका मौत का डर भाग जायेगा। सद्गुरु के शब्द आपको अभय दान दे देंगे। आपको मन की शान्ति मिल जायेगी।

यह सब कुछ कैसे होता है। मैं आपको यह बताना चाहूंगा कि मैंने ऐसा अनुभव किस प्रकार किया। पाँच

साल की आयु से ही समाधि, ध्यान लगने की वजह से मैंने बहुत ही छोटी उम्र में रूहानियत के अनेक मानसिक दर्जों का अनुभव कर लिया था। यहाँ पर इन अनुभवों का खुलासा देना ज़रूरी नहीं है, क्योंकि मैं अब इन दर्जों से गुज़र चुका हूँ। उन अनुभवों में बिना दवाई के बीमारी से ठीक होना, दुर्घटनाओं में बाल-२ बच जाना और मेरे सूक्ष्म शरीर के रूप का दूसरों को नज़र आने के ऐसे अनुभव थे, जिनका मुझे ज्ञान भी नहीं होता था। जब मैं फ़कीर बाबा के साक्षात् सम्पर्क में आया और मैंने कई बार उनकी रेडिएशन का अनुभव किया, तो मुझे यह यकीन हो गया कि मेरे द्वारा किए गए पहले अनुभव बहुत ऊँचे दर्जे के अनुभव नहीं थे। मेरा यह भ्रम धीरे-२ चला गया कि ईश्वर का कोई बाहरी रूप मेरी मदद कर रहा था। फ़कीर बाबा के सत्संगों से मेरा एक परम पुरुष में यकीन दिन प्रतिदिन बढ़ता गया और मैंने फ़कीर बाबा को अपना एव मात्र गुरु माना और उन्हें परम पुरुष स्वीकार करके पूजा इससे पहले मैंने किसी को भी ऐसा नहीं माना था।

मैंने कई कारणों से किसी भी मनुष्य को अपना गुरु नहीं माना था। पहला कारण यह था कि हमारा परिवार ऋषियों की परम्परा से सम्बन्ध रखता था। मेरे परदाद और मेरे परनाना दोनों रूहानियत में ओतप्रोत थे। मेरे नाना जी भी बहुत बड़े अभ्यासी भक्त थे। उन्होंने मुझे ऐसा मन्त्र दिया, जिसके अजपाजाप से मैं अपने जीवन में कई रुकावटों को दूर करने में कामयाब रहा। मैं यह कह सकता हूँ कि मुझे जो अन्दरूनी रूहानियत की वजह से, जीवन में जो सफलता मिली, उससे मेरा आत्म-विश्वास बहुत बढ़ गया और मैंने गुरु धारण करना ज़रूरी नहीं समझा।

दूसरी बात यह थी कि किशोरावस्था में मेरे ताऊ जी पण्डित शम्भुदत्त जी ज्योतिषी का मेरे जीवन पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा। वह ११५ वर्ष की आयु तक जीवित रहे। वह हर रोज़ प्रातः तीन से छः बजे तक घर में पूजा के कमरे में, भगवान् शंकर की सौ साल पुरानी मूर्ति के सामने बैठ कर समाधि लगाते थे, मैं उन्हें देखा करता। इसका मेरे मन पर गहरा असर पड़ा। वह एक विख्यात ज्योतिषी थे और अपनी रूहानी तरक्की के कारण सैकड़ों लोगों का मार्गदर्शन करते थे, लोग उनकी बहुत ही इज़्ज़त करते थे। वह मुझे बहुत ही प्यार करते थे और मैंने उन्हें अपने जीवन का आदर्श मान रखा था। वह प्रायः यह कहा करते थे कि एक ब्राह्मण भक्त के लिए केवल भगवान् शंकर ही गुरु होते हैं। मुझे उनकी इस बात पर पूरा यक़ीन हो गया और मैं भी उन्हीं की तरह उसी पूजा के कमरे में भगवान् शंकर की दिव्य मूर्ति पर ध्यान लगाकर घण्टों तक बैठा रहता था। यह भी एक कारण था कि मैंने भगवान् शंकर के इलावा किसी और को गुरु बनाने की जरूरत नहीं समझी।

इसके बाद अपने पूज्य पिता पण्डित बलदेव कृष्ण जी के इलावा मुझ पर संस्कृत के महान् विद्वान् पण्डित मोतीलाल जी शास्त्री (मानव आश्रम, जयपुर के निवासी) का बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा। उनके निजी सत्संगों और उनके द्वारा लिखे गए साहित्य ने मुझे परमतत्त्व का ऐसा ऊँचा ज्ञान तथा भौतिक जगत् का वैज्ञानिक ज्ञान दिया, जो कि वेदों, उपनिषदों और भगवद्गीता की तर्कात्मक सूझ-बूझ पर आधारित था। मैंने अपने जीवन में जगत् और ईश्वर की, बुद्धि पर आधारित ऐसी स्पष्ट व्याख्या और कहीं

नहीं देखी। मैंने उन्हें अपना विद्यागुरु तो स्वीकार किया, परन्तु आध्यात्मिक गुरु नहीं माना। इन्हीं कुछ कारणों से किसी मनुष्य को गुरु धारण करने की मेरी रुचि नहीं थी। किन्तु जीवन के इन सब अनुभवों ने मुझे उस आखिरी कदम उठाने पर तैयार कर दिया था, जो मैंने फ़कीर बाबा को पूर्ण सद्गुरु स्वीकार करने में उठाया। मेरा यह कदम १९८० में मेरे जीवन में आखिरी दर्जा साबित हुआ और उस समय मुझे मेरे रूहानियत अनुभव की सबसे ऊँची निधि मिल गई।

चाहे मैं इस घटना के विषय में पहले भी कह चुका हूँ, फिर भी मैं इसे उस पहले प्रश्न का उत्तर देने के लिए दोहराऊँगा, जिसके मुताबिक हमें यह जानना है कि एक पूर्ण सद्गुरु क्या कर सकता है। बाकी दो प्रश्नों का उत्तर मैं अगले मासिक सन्देश में दूँगा। यह घटना मेरे चेतन जीवन में हमेशा के लिए स्मरण रखने वाली घटना रहेगी। मैं यह तो नहीं कह सकता कि इस घटना से मेरे व्यक्तित्व में कोई ऐसी जबर्दस्त तबदीली हो गई हो, जिसे बाहर वाले तुरन्त देख सकें। फिर भी इसी एक अनुभव ने मुझे अन्तस् से पूरी तरह से नया बना दिया। मैं एक ऐसे रास्ते पर चल पड़ा, जिसका मुझे पहले भान तो था, किन्तु जिसके अभ्यास में कुछ अस्पष्टता थी। अब वह रास्ता बिल्कुल साफ़ दिखाई देने लगा, जिसके कारण परमतत्व और मेरी ज़ात के स्वरूप के बारे में मेरे सभी शक और डर दूर हो गए। सुख-दुःख, लाभ-हानि, निन्दा-स्तुति के द्वन्द्व और बुद्धि के विरोधाभास सब समाप्त हो गए। हालाँकि पहले भी मेरे जीवन का व्यवहार काफ़ी हद तक सुलझा हुआ था, किन्तु इस घटना के बाद, मुझमें मन, बुद्धि और आत्मा

की समता आ गई। मुझे शायद इस वास्तविक अनुभव की हालत को बयान करने के लिए उचित शब्द नहीं मिल रहे, फिर भी मैं इस हालत को अलंकार के ज़रिये एक ठोस मिसाल देकर बताने की कोशिश करूँगा। मान लीजिए कि आप इस पृथ्वी पर पूर्व से लेकर पश्चिम तक और उत्तर से लेकर दक्षिण तक पैदल चलते हैं। आप इस पृथ्वी की सतह पर मैदान, पहाड़, नदियां, वादियाँ और पठार आदि देखेंगे। आपकी निष्पक्ष दृष्टि आपको यह बात मानने के लिए मजबूर करेगी कि पृथ्वी की सतह पर एक दूसरे के विरोधी हिस्से हैं। पहाड़ मैदानों के मुकाबले में भिन्न हैं, जंगल हरियाली की वजह से रेगिस्तान से भिन्न हैं और नदियाँ पहाड़ों, मैदानों, जंगलों और सूखी तथा हरी किस्म की वादियों से भिन्न हैं। मान लीजिए कि आप एक आकाशिक जहाज़ में बैठ कर, चन्द्रमा की ओर ऊँचे उड़े जा रहे हैं। धीरे-२ पृथ्वी के भिन्न भागों वाला ऊपर दिया गया नज़ारा ओझल होता चला जायेगा और चन्द्रमा की सतह से पृथ्वी ग्रह का सुन्दर नीला रूप, एक पूर्ण गोलाकार के रूप में आपको दिखाई देने लगेगा। पहाड़, नदियाँ, मैदान, जंगल, रेगिस्तान और सातों समुद्र एक दूसरे में जुड़ कर एक दिखाई देंगे। आपकी आँख और कैमरे के लिए पृथ्वी के विभिन्न और एक दूसरे के विरोधी भाग, पूरी तरह से समरूप दिखाई देंगे। १९८० में क्लीवलैण्ड, अमेरिका में, मेरे मकान पर परमदयाल जी महाराज द्वारा दिए गए निजी सत्संगों से मेरे साथ कुछ ऐसी ही घटना घटी थी।

इस बार परमदयाल जी महाराज हमारे घर में लगातार दो हफ्ते तक एक साथ रहे। यह पहली बार ऐसा हुआ कि महाराज जी ने लोगों के घरों में जाने में अपनी अरुचि दिखाई और हमें साफ़-२ शब्दों में कहा कि इस बार

वह केवल हमारे साथ ही रहने के लिए आए हैं न कि लोगों को मिलने या सत्संग देने। फिर भी उन्हें कुछ सत्संगियों के घर जाना ही पड़ा। एक शाम को हम जब क्लीवलैण्ड से तीस मील की दूरी पर एक छोटे से शहर मैष्टर में सत्संग के लिए जा रहे थे, तो महाराज जी प्रसन्न मुद्रा में बोले, "कितनो दूर तेरी काशी, ओ पण्डिता! कितनी दूर तेरी तेरी काशी!" (जब-२ भी मैं उस सड़क से गुज़रता हूँ महाराज जी द्वारा कहे गए वे मधुर शब्द अब भी मेरे कानों में गूँजते हैं), मैंने महाराज जी को बताया कि हम बहुत ही जल्दी डा० बिन्द्रा के घर पहुँचने ही वाले थे जहाँ पर उनके आराम का इन्तजाम कर दिया गया था। जब मैंने महाराज जी को यह बतलाया कि हमें रात डा० बिन्द्रा के घर ही बितानी थी, तो वह मुझ पर उबल पड़े और बोले, "शर्मा! क्या तुम्हारे पास मुझे खिलाने के लिए दो रोटी भी नहीं है, जो तुम मुझे जगह-२ भटका रहे हो?" मैंने सच्चे दिल से महाराज जी से माफ़ी मांगी। मेरी समझ में यह बात पूरी तरह से आ गई कि उस दौरे में महाराज जी केवल मुझे ही चेताने और ज्ञान देने के लिए ही भारत से इतनी दूर आए थे।

मेरा यह यकीन दूसरी रात को और भी पक्का हो गया, जब हम क्लीवलैण्ड में अपने घर पर बैठे थे। उस समय महाराज जी के पास मैं, भाग्य (माता जी) परसराम जी अग्रवाल, महाराज जी की परम भक्त शिष्या मारशा मिलर, उनके पति जॉन मिलर तथा उनकी इकलौती सन्तान १२ वर्षीया कुमारी शैण्डा भी मौजूद थीं। मिलर सपरिवार १२०० मील की दूरी फ्लोरिडा से महाराज जी के दर्शन करने के लिए आए थे और हमारे घर रह रहे थे।

मैंने उस समय महाराज जी से एक प्रश्न किया कि सुरत-शब्द योग के अनुभव में आत्मा और परमतत्त्व के जुड़ जाने की अवस्था का क्या स्वरूप होता है ? मेरे इस जिज्ञासा भरे प्रश्न का उत्तर देते हुए महाराज जी बोले, "अब मैं बहुत ही ऊपर ऊँचा चला गया हूँ। जब समाधि की हालत में मैं अपने अन्तस् में जाता हूँ, मुझे सहस्रदल कमल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न और यहाँ तक कि भंवरगुफा के स्तरों से गुज़रना नहीं पड़ता। ये सब मानसिक स्तर हैं, जो कि पुस्तकों के पढ़ने या गुरु से सुने हुए विचारों के, संस्कारों के असर होते हैं। मैं इनके अस्तित्व से इन्कार नहीं करता क्योंकि मैंने खुद इनका अनुभव तथा आनन्द प्राप्त किया हुआ है।

परन्तु अब मैं सीधा अनन्त प्रकाश और अनन्त तथा अखण्ड शब्द में जाता हूँ। इस महान् प्रकाश तथा अनहद शब्द का कोई अन्त नहीं। इस अनन्त प्रकाश तथा शब्द में विलीन हो जाने के बाद और उस आनन्द का अनुभव करने के बाद, जिसको कि जबान बयान नहीं कर सकती, मैं उस अनुभव से भी परे जाने की कोशिश करता हूँ। मैं उस स्तर पर पहुँचना चाहता हूँ, जहाँ मैं अपने में उस तत्त्व को देख सकूँ, पहचान सकूँ अथवा अनुभव कर सकूँ, जो प्रकाश के समुद्र को देखता है तथा अनहद नाद को सुनता है। जब मैं कभी-२ वहाँ पहुँचता हूँ, कभी सप्ताह में एक बार, कभी पंद्रह दिन में एक बार और कभी महीने में एक बार, तो उस समय मैं ऐसी निश्चितता तथा कायम और दायम हालत का अनुभव करता हूँ, जहाँ पर न प्रकाश होता है, न शब्द और ऐसे लगता है कि मैं परम चेतना के अनन्त समुद्र का एक चेतन बुलबुला हूँ। मैं अपने को इस

तरह खो देता हूँ कि मुझे इस बात का होश नहीं रहता कि मेरा अस्तित्व है और न ही इस बात का होश होता है कि मेरा अस्तित्व नहीं है। परन्तु शर्मा / जब मैं इस परमतत्त्व में विलीन होने की ऐसी हालत के बाद वापिस आ जाता हूँ (जहाँ पर कि मेरे शरीर, मन और आत्मा के सभी अनुभव गुम हो गए थे), इससे यह बात साफ़ ज़ाहिर हो जाती है कि मेरी निजी हस्ती वहाँ खत्म नहीं हो गई थी। यदि खत्म हो गई होती तो मैं वहाँ से वापिस कैसे आता ! अत: मैंने जिस हालत का अनुभव किया था, वह "कुछ नहीं" नहीं थी, बल्कि वह "परिपूर्णता" की वह अथाह हालत थी, जो असल में मेरी ज़ात है, मेरा निज स्वरूप है और परमधाम है।" परमदयाल जी महाराज के ये शब्द मेरे हृदय को छूते हुए, मन से गुज़रते हुए सीधे मेरी आत्मा में समा गए। उस समय एक ऐसा विस्फोट हुआ, ऐसा धमाका हुआ, जिसके बाद मेरी रग-२ में मेरी ज़ात के कायम और दायम होने की भावना जागृत हो गई। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैं भी उसी हालत का अनुभव कर रहा था, जो फ़कीर बाबा ने अपने विषय में बताई थी। मैंने उस हालत को न ही केवल अपनी बुद्धि के द्वारा समझा, बल्कि एक ऐसी निर्भयता की खास हालत का अनुभव किया, जो उस दिन से लेकर आज तक चेतन या अचेतन हालत में मेरे अन्दर कायम है। एक पूर्ण सद्गुरु अपने परम शिष्य को यह अभयदान दे सकता है। यह अभयदान दुनिया में सबसे ऊँचा दान है।

इस लम्बे सन्देश के इन शब्दों के साथ मैं सच्चे दिल से आपको सद्भावना और आशीर्वाद देता हूँ। मैं चाहता हूँ कि गुरुपूर्णिमा के इस अवसर पर आपको स्वास्थ्य, सम्पत्ति और शान्ति मिले।

आपका फकीरमय

मानव

परमसन्त मानवदयाल डा० ईश्वरचन्द्र शर्मा जी महाराज का

दशहरा-भ्रमण विवरण (Programme)

प्रस्थान तिथि		आगमन तिथि तथा विश्राम
होशियारपुर से १९-९-८४	—	हिसार, भादरा २०-९-८४ से २३-९-८४
हिसार से २४-९-८४	—	सुरतगढ़ २४-९-८४ से २६-९-८४
सुरतगढ़ से २६-९-८४	—	चुरू २६-९-८४ से २७-९-८४
चुरू से २८-९-८४		जयपुर (केवल विश्राम) २८-९-८४
जयपुर से २९-९-८४	—	मोदीनगर ३०-९-८४ से १-१०-८४
मोदीनगर से २-१०-८४	—	दिल्ली ३, ४ तथा ५-१०-८४
दिल्ली से ६-१०-८४	—	सरसोंहेड़ी, सहारनपुर ६, ७ तथा ८-१०-८४
सहारनपुर से ९-१०-८४	—	अहेरी (आन्ध्रप्रदेश) — १०-१०-८४ से १८-१०-८४
अहेरी से १८-१०-८४		होशियारपुर २०-१०-८४

शुद्धिपत्र

कृपया मानव मन्दिर, अगस्त 1984 के पृष्ठ 27 पर छपे शीर्षक (Heading) की तारीख 12-3-1980 की बजाय 12-3-1984 पढ़ें।

शुभ सूचना

"३३ वाँ वार्षिक दशहरा फकीर मानवता सम्मेलन" का आयोजन दयाल मानवता प्रचारक सभा, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली के द्वारा सालवान पब्लिक स्कूल, ओल्ड राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली में ३, ४ अक्टूबर ८४ को कर्मयोगी श्री जयपाल बजाज जी की अध्यक्षता में होगा ।

इस शुभ अवसर पर हजूर परमसन्त पीरेमुर्गाँ साहिब अपने ८० वर्षों के जीवन अनुभव तथा तपोज्ञान के आधार पर सरल भाषा में गृहस्थ जीवन में सच्चे मानव बनने तथा शान्ति, प्रेम और आनन्द, मोक्ष प्राप्ति का मार्ग-दर्शन करेंगे ।

इसी विषय पर अपनी जीवन-दृष्टि तथा आध्यात्मिक अनुभूति की अमृत-वर्षा करने हेतु परमसन्त मानवदयाल डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज, उत्तराधिकारी परमसन्त परमदयाल पं० फकीरचन्द जी महाराज, मानवता मन्दिर, होशियारपुर भी उपस्थित होंगे । अन्य प्रमुख वक्ताओं की उपस्थिति इस प्रकार है : सन्त दयालानन्द (आनन्द राव) जी महाराज, आन्ध्रप्रदेश, सन्त ताराचन्द जी महाराज, हरियाणा, सन्त आनन्द दयाल (नन्द लाल) जी महाराज, दिल्ली, आचार्य प्रेमानन्द जी महाराज, उत्तरप्रदेश, आचार्य पी. एन. पण्डित, काश्मीर, श्री कृष्ण वसीन (कबीर) जी महाराज, श्री महता जी महाराज, ज्ञानी गुरुमुख सिंह जो महाराज, डा० जगदीश चन्द्र जी, (प्रधान) आर्य समाज, दिल्ली भी अपने विचार देंगे ।

प्रेमी भाई-बहन इस समय पर उपस्थित होकर इस जीवन-दर्शन से लाभ उठायें ।

प्रोग्राम :—३ अक्टूबर १९८४, प्रातः ९ से १२ बजे तथा सायं ३ से ५ बजे तक ।

४ अक्टूबर १९८४, प्रातः ९ से १२ बजे तक ।

नोट :—३ अक्टूबर प्रातः व सायं और ४ अक्टूबर को केवल प्रातः के लिए हमेशा की तरह यथाशक्ति भोजन का प्रबन्ध सभा की ओर से होगा, दूर से आने वाले महानुभाव बिस्तर अवश्य साथ लायें ।

श्री मोहन लाल नय्यर (सचिव)
दयाल मानवता प्रचारक सभा,
दुकान नं० १०६ के पीछे
शंकर रोड मार्केट, न्यू राजेन्द्र नगर,
नई दिल्ली-६०. फोन नं० ५८३२३०

निवेदक व दर्शनाभिलाषी :
श्री कृष्ण लाल अग्रवाल
(प्रधान)

Regd. No. 26265/74 SEPTEMBER 10th 1984
MANAV MANDIR NWHSP—7

ADDRESS

To-

198. Sh. T. Agamaih Cloth
rchant V& P.O. Banswada
tt: Nizamabad.

Phone : 2022

From :

MANAVTA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR-146001.

Shiv Dev Rao Press Manavta Mandir, Hoshiarpur (Pb.)